

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 6: नारद और व्यास

11 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



विशाल वन में अकेले, वह बालक जो आगे चलकर देवर्षि नारद बने, एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठा है, और श्रीहरि धीरे-धीरे उसके हृदय में प्रकट होते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विजडम् में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की यह भक्तिमयी यात्रा। पिछले अध्याय में देवर्षि नारद ने व्यास जी को बताया था कि किस प्रकार पूर्वजन्म में भ्रमणशील साधुओं की संगति ने एक विनम्र दासी-पुत्र के हृदय में भक्ति के बीज बोए। अब व्यास जी शेष कथा जानना चाहते हैं — उस पितृहीन बालक का क्या हुआ? यह षष्ठ अध्याय नारद जी का उत्तर है — समस्त शास्त्रों में सर्वाधिक

कोमल और ज्योतिर्मय जीवन-कथाओं में से एक। यह हमें एक एकाकी वन से, एक दिये और फिर छीने गये दर्शन के मध्य से, मृत्यु और एक नई सृष्टि के पार, उस शाश्वत परिव्राजक तक ले जाती है जो अपनी वीणा से भगवान् की महिमा गाता है और थके हुए संसार को आनन्दित करता है।

अध्याय-परिचय

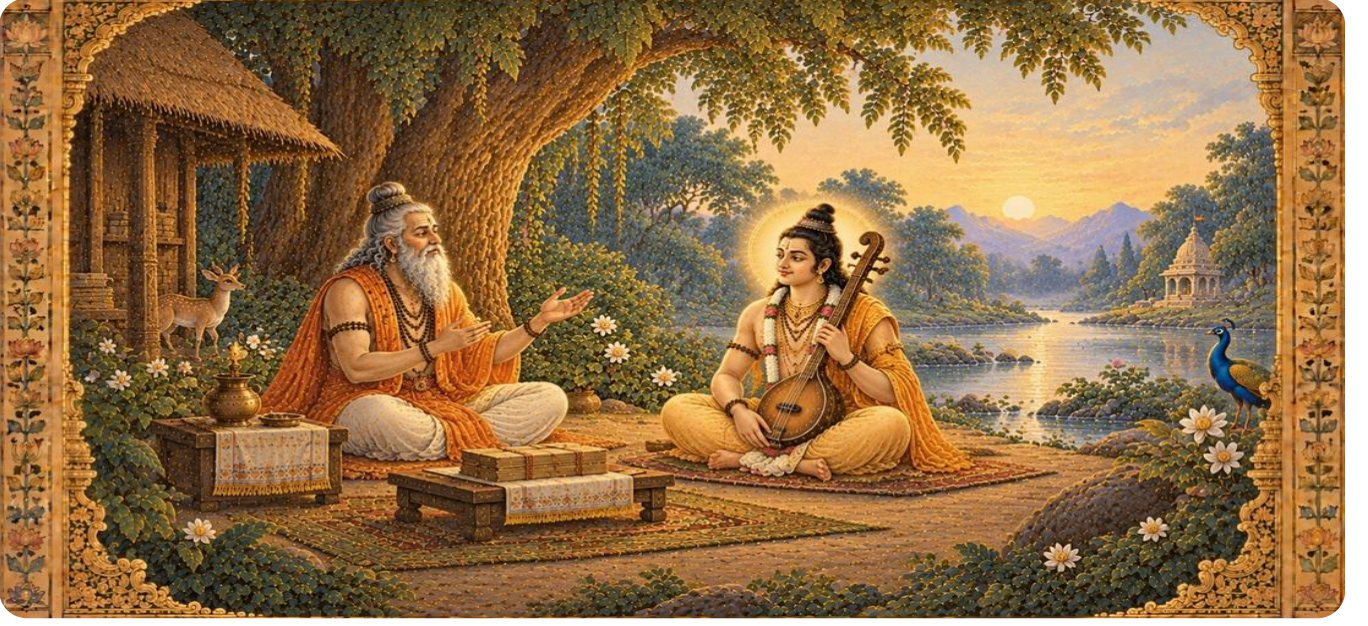
- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: नारद और व्यास का संवाद
- प्रमुख वक्ता: देवर्षि नारद (पूज्य सूत उग्रश्रवा जी द्वारा कही जा रही कथा के भीतर)
- प्रमुख श्रोता: महर्षि व्यास, बादरायण, सत्यवती-नन्दन (और कथा-परिवेश में शौनक तथा नैमिषारण्य के ऋषिगण)
- मुख्य स्थल: नारद जी के पूर्वजन्म का एक विशाल निर्जन वन; परिवेश-कथा नैमिषारण्य वन में
- केन्द्रीय विषय: नारद जी के जन्म और साधना का रहस्य — भगवान् का दर्शन, मृत्यु और सृष्टि के पार उनकी यात्रा, और भगवान् की महिमा गाने की मुक्तिदायिनी शक्ति
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 6, श्लोक 1-38
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

पंचम अध्याय में नारद जी ने खिन्न व्यास जी को सान्त्वना देते हुए अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाई थी: एक नीच दासी के पुत्र-रूप में जन्म लेकर उन्होंने वर्षा-ऋतु भर साधुओं की सेवा की, उनसे श्रीहरि की महिमा सुनी, और इस प्रकार शुद्ध भक्ति का बीज प्राप्त किया। यहाँ व्यास जी उनसे उस कथा को अन्त तक कहने की प्रार्थना करते हैं।

व्यास जी वह प्रश्न पूछते हैं जो शेष रह गया था

नारद जी में भक्ति के प्रथम उदय की कथा सुनकर, सत्यवती-नन्दन महर्षि व्यास उसके आगे का सब कुछ सुनना चाहते थे, और उन्होंने देवर्षि से पुनः प्रश्न किया।



देवर्षि के जन्म और साधना की कथा सुनकर व्यास जी उनसे पुनः प्रश्न करते हैं (श्रीभा० 1.6.1)।

सूत उवाच

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ।

भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन् व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥

sūta uvāca evaṁ niśamya bhagavān devarṣer janma karma ca bhūyaḥ papraccha taṁ brahman vyāsaḥ satyavatī-sutaḥ

अर्थ: इस प्रकार देवर्षि के जन्म और कर्मों को सुनकर, सत्यवती-नन्दन पूज्य व्यास जी ने उनसे पुनः प्रश्न किया। (श्रीभा० 1.6.1)

उनके प्रश्न तीन थे, और ये प्रत्येक विचारशील हृदय के प्रश्न हैं। व्यास जी ने पूछा — जिन साधुओं ने आपको उपदेश दिया था, उनके चले जाने पर आपने, संसार में अकेले, एक बालक-मात्र होकर, क्या किया? आपने अपने शेष जीवन को किस प्रकार व्यतीत किया, और समय आने पर अपने नश्वर शरीर को कैसे त्यागा? और, हे देवताओं में श्रेष्ठ, यह कैसे हुआ कि सर्वग्रासी काल भी आपके पूर्व-कल्प के अस्तित्व की स्मृति को मिटा न सका?

एक पितृहीन बालक और माता का देहान्त

नारद जी ने कोमलता से उत्तर दिया। वे अपनी माता के एकमात्र पुत्र थे — एक अनपढ़ स्त्री जो दासी का काम करती थी और स्नेह के बन्धन में अपने पुत्र से बँधी थी, जो केवल उसी पर आश्रित था। यद्यपि वह उनका पालन करना चाहती थी, तथापि वह असमर्थ थी; और यहाँ नारद जी ने एक ऐसा सत्य कहा जिसने उनके सम्पूर्ण जीवन को गढ़ा — यह संसार अपने शासक के वश में उसी प्रकार है जैसे कठपुतली सूत्रधार के हाथ में। माता के प्रति आदरवश वे उसी ब्राह्मण-बस्ती में रहे, और केवल पाँच वर्ष के होने से उन्हें तब चारों दिशाओं का, अथवा देश और काल का भी कोई ज्ञान न था।



वह बालक जो आगे चलकर नारद बना, एक निर्धन और भक्तिमयी दासी का एकमात्र पुत्र था (श्रीभा० 1.6.6-7)।

फिर वह रात्रि आई जिसने सब कुछ बदल दिया। उनकी माता गाय दुहने के लिए घर से निकली, और अन्धकारमय मार्ग पर उसका पैर एक सर्प पर पड़ गया, जिसने — जैसा भाग्य को अभीष्ट था — उस असहाय स्त्री को डस लिया, और इस प्रकार उसका जीवन समाप्त हो गया। कोई शोकग्रस्त बालक इसे क्रूरता कहता। नारद जी ने इसे एक कृपा माना: उन्होंने इसे उन भगवान् का वरदान समझा जो अपने भक्तों के कल्याण के लिए सदा तत्पर रहते हैं, और जिन्होंने अब उन्हें उस मार्ग के लिए मुक्त कर दिया जिस पर उन्हें चलना था। और इस प्रकार, अन्ततः अनासक्त होकर, वह बालक उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा।

अकेले, महान् वन की ओर

वे समृद्ध देशों और नगरों से, गाँवों और गोप-बस्तियों से, खानों और छोटे ग्रामों से, तथा पर्वतों-नदियों के पास बने साधुओं के आश्रमों से होकर निकले; बगीचों और उपवनों से, अनेक रंगों की खनिजों से चमकती पहाड़ियों से, हाथियों द्वारा तोड़ी गई डालियों वाले वृक्षों से, और देवताओं द्वारा सेवित कमल-सरोवरों से — जो पक्षियों से मुखरित और मँडराते भ्रमरों से सुशोभित थे। इन सबको अकेले पार कर वे अन्ततः एक विशाल और भयंकर वन के पास पहुँचे, जो सरकंडों, पोले बाँसों और कुश-घास से सघन था, देखने में भयावह, तथा सर्पों, उल्लुओं और गीदड़ों से भरा हुआ।



अकेले यात्रा करते हुए बालक ने अनेक देशों को पार किया और एक विशाल तथा भयंकर वन के पास पहुँचा (श्रीभा० 1.6.11-13)।

मन और शरीर से थके हुए, प्यास और भूख से व्याकुल, उन्होंने एक नदी के कुण्ड में स्नान किया, उसका जल पिया, आचमन किया, और स्वयं को तरोताज़ा अनुभव किया।

पीपल वृक्ष के नीचे

उस वन में, जहाँ कोई मनुष्य न रहता था, बालक एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठ गया, और अन्तर्मुख मन से अपने ही हृदय में विराजमान भगवान् का ध्यान करने लगा — ठीक वैसे ही जैसा उसने साधुओं के मुख से उनका वर्णन सुना था।

तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः ।

आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १५ ॥

tasmin nirmanuje 'raṇye pippalopastha āśritaḥ ātmanātmānam ātmasthaṁ yathā-śrutam acintayam

अर्थ: मनुष्य-रहित उस वन में, एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर, मैंने अपने मन से अपने भीतर स्थित आत्मस्वरूप भगवान् का ध्यान किया, जैसा मैंने उनके विषय में सुना था। (श्रीभा० 1.6.15)

जैसे-जैसे वे प्रेम से अभिभूत मन से भगवान् के चरण-कमलों का ध्यान करते गये, उत्कण्ठा के आँसू उनके नेत्रों में उमड़ आये — और धीरे-धीरे, उनके हृदय के पटल पर, श्रीहरि प्रकट हुए।

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ।

औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥ १६ ॥

dhyāyataś caraṇāmbhojaṁ bhāva-nirjita-cetasā autkaṇṭhyāśru-kalākṣasya hṛdy āsīn me śanair hariḥ

अर्थ: जब मैं प्रेम से जीते हुए हृदय द्वारा उनके चरण-कमलों का ध्यान कर रहा था, और उत्कण्ठा के आँसुओं से मेरे नेत्र भरे थे, तब श्रीहरि धीरे-धीरे मेरे हृदय में प्रकट हुए। (श्रीभा० 1.6.16)

दिया और फिर छीना गया दर्शन

प्रेम के आवेग से उनके रोम-रोम खड़े हो गये, और उनके हृदय ने अत्यधिक आनन्द और शान्ति का रोमांच अनुभव किया। आनन्द के प्रवाह में निमग्न होकर उन्होंने अपना तथा जिस दर्शन को वे देख रहे थे, उस दोनों का भान खो दिया। तभी, उसी क्षण, भगवान् का वह अनिर्वचनीय रूप — जिसने उनके हृदय को मुग्ध कर दिया था और समस्त शोक हर लिया था — उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। अन्तस्तल तक व्याकुल होकर बालक उठ खड़ा हुआ। बार-बार उसने अपने मन को हृदय में स्थिर कर उस प्रिय रूप को खोजा, पर वह लौटा नहीं; और वह उतना ही दुखी अनुभव करने लगा जितना कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी परम प्रिय अभिलाषा अधूरी रह गई हो।

वह वाणी जिसने उसे सान्त्वना दी

उस एकाकी वन में इस प्रकार व्याकुल बालक से, वाणी की पहुँच से परे वे भगवान्, उदात्त तथा कोमल शब्दों में बोले, मानो उसके शोक को शान्त करने के लिए।

हन्तास्मिज्जन्मनि भवान्मा मां द्रष्टुमिहार्हति ।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २१ ॥

hantāsmiñ janmani bhavān mā māṁ draṣṭum ihārhati avipakva-kaṣāyāṇāṁ durdarśo 'haṁ kuyoginām

अर्थ: हाय, इस जन्म में तुम मुझे फिर नहीं देख सकोगे; क्योंकि जिनके कषाय (मल) अभी भस्म नहीं हुए और जो योग में अपरिपक्व हैं, उनके लिए मैं दुर्दर्श हूँ। (श्रीभा० 1.6.21)

भगवान् ने बताया कि उन्होंने अपना रूप केवल एक बार इसलिए दिखाया था कि उसमें उन्हें देखने की तीव्र उत्कण्ठा जगे; क्योंकि जो इस प्रकार भगवान् के लिए तड़पता है, वह धीरे-धीरे हृदय की प्रत्येक शेष वासना को त्याग देता है। फिर उन्होंने बालक की उस छोटी-सी श्रद्धामयी सेवा का फल प्रकट किया।



अदृश्य भगवान् व्याकुल बालक को सान्त्वना देते और उसे शाश्वत स्मृति का वरदान देते हैं (श्रीभा० 1.6.21-25)।

सत्सेवयादीर्घयापि जाता मयि दृढा मतिः ।

हित्वावद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥ २३ ॥

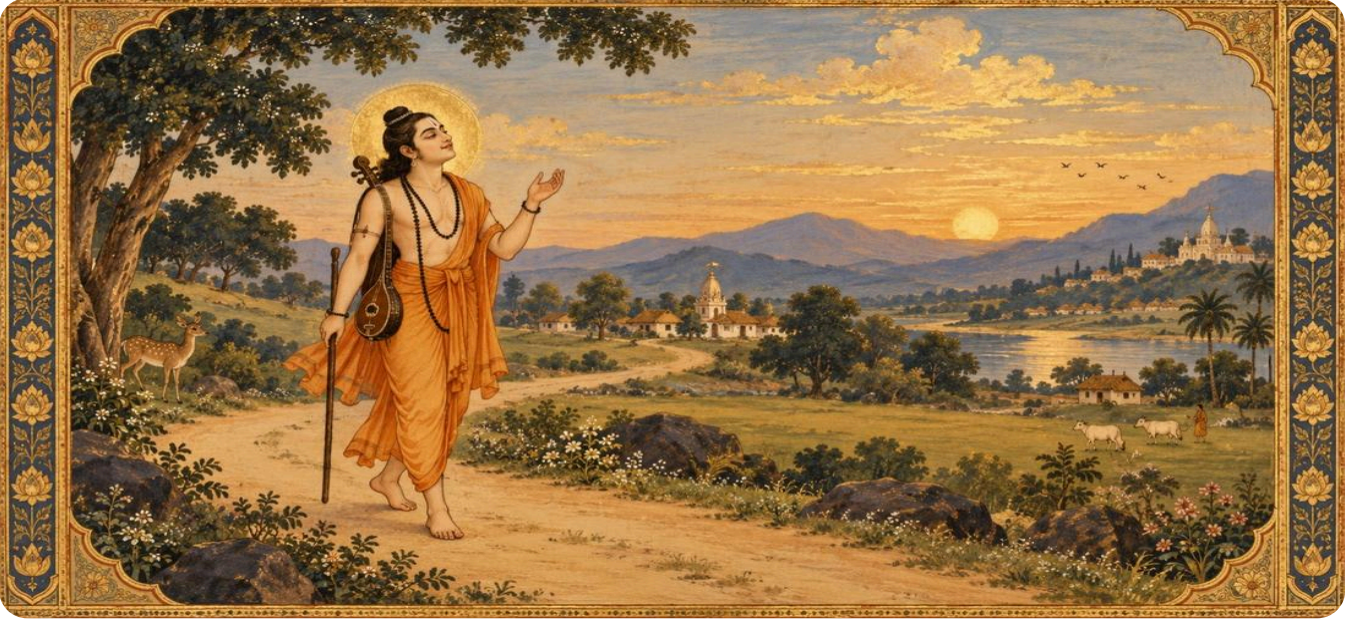
sat-sevayādirghayāpi jāta mayi dṛḍhā matiḥ hitvāvadyam imaṁ lokaṁ gantā maj-janatām asi

अर्थ: साधुओं की तुम्हारी सेवा से, यद्यपि वह अल्पकालीन थी, तुम्हारी बुद्धि मुझमें दृढ़ता से स्थिर हो गई है; इस अपूर्ण शरीर को त्यागकर तुम मेरे ही पार्षदों में से एक हो जाओगे। (श्रीभा० 1.6.23)

भगवान् ने वचन दिया कि उनमें स्थिर हुई वह बुद्धि कभी नष्ट नहीं होगी; उनकी कृपा से नारद जी सम्पूर्ण सृष्टि के प्रलय के समय भी उन्हें स्मरण करते रहेंगे। इतना कहकर वह महान् अदृश्य सत्ता — सबका शासक, आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त — मौन हो गई। भगवान् की उस अनुपम कृपा को पहचानकर बालक ने महान्-से-महान् उन प्रभु के समक्ष अपना सिर झुका दिया।

पृथ्वी भर में नाम-संकीर्तन

उस दिन से, समस्त संकोच त्यागकर, नारद जी अनन्त भगवान् के गूढ़ और मंगलमय नामों को ऊँचे स्वर में दोहराने और उनकी लीलाओं का चिन्तन करने लगे। प्रत्येक कामना से रहित, मद और मत्सर से मुक्त, और अन्तःकरण में सन्तुष्ट होकर, वे अपने नियत काल की प्रतीक्षा करते हुए पृथ्वी पर विचरण करने लगे।



मद और तृष्णा से मुक्त होकर नारद भगवान् के मंगलमय नामों का संकीर्तन करते और पृथ्वी पर विचरण करते हैं (श्रीभा० 1.6.26)।

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्

गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।

गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः

कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः ॥ २६ ॥

nāmāny anantasya hata-trapaḥ paṭhan guhyāni bhadraṇi kṛtāni ca smaran gām paryaṭaṁs tuṣṭa-manā gata-spṛhaḥ kālaṁ pratīkṣan vimado vimatsaraḥ

अर्थ: समस्त संकोच से रहित होकर, अनन्त भगवान् के नामों का उच्चारण करते और उनकी गूढ़, मंगलमय लीलाओं का स्मरण करते हुए, मैं सन्तुष्ट तथा तृष्णा-रहित होकर, मद और मत्सर से मुक्त, अपने काल की प्रतीक्षा करते हुए पृथ्वी पर विचरण करता रहा। (श्रीभा० 1.6.26)

मृत्यु और एक नई सृष्टि के पार

जिसका चित्त श्रीकृष्ण में स्थिर था, जो अनासक्त और शुद्ध-हृदय था, उसके लिए नियत समय पर मृत्यु बिजली की अकस्मात् चमक के समान आई। उनका भौतिक शरीर, अपना प्रारब्ध भोग चुकने पर, गिर गया, और नारद जी भगवान् के पार्षद के योग्य एक दिव्य रूप में परिणत हो गये। उस कल्प के अन्त में, जब भगवान् नारायण ने सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में समेटकर प्रलय-जल पर शयन किया, और ब्रह्मा विश्राम हेतु भगवान् के शरीर में प्रवेश करने को हुए, तब नारद जी भी — अपने सूक्ष्म रूप में — प्रविष्ट होती श्वास के साथ भीतर चले गये। युगों पश्चात्, जब चार युगों के एक सहस्र चक्र बीत गये और ब्रह्मा पुनः सृष्टि रचने को उठे, तब नारद जी मरीचि आदि महर्षियों के साथ स्रष्टा की इन्द्रियों से पुनः प्रकट हुए। भगवान् के अखण्ड स्मरण का उनका व्रत एक बार भी भंग न हुआ था; और अब, भगवान् महाविष्णु की कृपा से, वे तीनों लोकों में — उनके भीतर और परे — निर्बाध विचरण करते हैं।

वीणा और अनन्त गीत

फिर नारद जी ने उस वाद्य की चर्चा की जिससे वे सब लोकों में जाने जाते हैं — वह वीणा जो स्वयं भगवान् ने उन्हें प्रदान की थी, जो पवित्र नाद के सात स्वरों को इंकृत करती है। उसे बजाते हुए वे सर्वत्र विचरण करते हैं, श्रीहरि की कथा गाते हुए।



स्वयं भगवान् द्वारा दी गई वीणा के साथ नारद लोकों में विचरण करते हुए श्रीहरि की महिमा गाते हैं (श्रीभा० 1.6.32-33)।

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।

आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३३ ॥

pragāyataḥ sva-vīryāṇi tīrtha-pādaḥ priya-śravāḥ āhūta iva me śīghraṁ darśanaṁ yāti cetasi

अर्थ: जब मैं उनके पराक्रमों का गान करता हूँ, तब पवित्र यश वाले वे भगवान्, जिनके चरण समस्त तीर्थों के उद्गम हैं, शीघ्र ही मेरे हृदय में प्रकट हो जाते हैं, मानो गीत से आमन्त्रित होकर। (श्रीभा० 1.6.33)

गीत क्यों तारता है

नारद जी ने बताया कि यही महान् रहस्य है। जिनके मन इन्द्रिय-भोग की तृष्णा से निरन्तर सन्तप्त रहते हैं, उनके लिए भगवान् की लीलाओं का वर्णन संसार-सागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ बेड़ा सिद्ध हुआ है।

एतद्व्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ।

भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३४ ॥

etad dhy ātura-cittānām mātṛā-sparśecchayā muhuḥ bhava-sindhu-plavo dṛṣṭo hari-caryānuvarṇanam

अर्थ: जिनके हृदय इन्द्रिय-सम्पर्क की अनवरत तृष्णा से व्याकुल हैं, उनके लिए श्रीहरि की लीलाओं का वर्णन जन्म-मृत्यु के सागर को पार करने का बेड़ा पाया गया है। (श्रीभा० 1.6.34)

उन्होंने आगे कहा कि काम और लोभ से बार-बार आहत हृदय योग की विविध साधनाओं — यम-नियम आदि — से उतनी निश्चितता से शान्ति नहीं पाता, जितनी मुक्तिदाता भगवान् मुकुन्द की प्रेममयी सेवा से पाता है।

नारद विदा लेते हैं

अन्त में नारद जी ने व्यास जी से कहा — “हे निष्पाप, अब मैंने आपको वह सब कह दिया जो आपने पूछा था — अपने जन्म और कर्मों का रहस्य, तथा वह साधन जिससे आपकी आत्मा को विश्राम मिले।” और कथा पुनः नैमिषारण्य वन में लौटती है, जहाँ पूज्य सूत जी इसे आगे बढ़ाते हैं। इतना कहकर देवर्षि नारद विदा लेकर, अपनी वीणा बजाते हुए, अपने मार्ग पर चल पड़े — उन्हें अपना कोई प्रयोजन शेष न था।

प्रमुख श्लोक — परिव्राजक ऋषि का सौभाग्य

अध्याय का समापन सूत जी की अपनी श्रद्धांजलि से होता है — उस दिव्य गायक के प्रति एक आशीर्वचन, जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व ही भगवान् का गीत है।

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।

गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥ ३८ ॥

aho devarṣir dhanyo 'yaṁ yat-kīrtim śārṅgadhanvanaḥ gāyan mādyann idaṁ tantryā ramayaty āturaṁ jagat

अर्थ: अहो, धन्य हैं ये देवर्षि, जो — शार्ङ्ग-धनुष धारण करने वाले भगवान् की महिमा अपनी वीणा पर गाते हुए — स्वयं भी आनन्द से उन्मत्त हैं और इस सन्तप्त संसार को भी आनन्दित करते हैं। (श्रीभा० 1.6.38)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. संसार भगवान् के हाथ में चलता है। अपने शोक में भी बालक ने पहचाना कि संसार अपने शासक के वश में है, जैसे कठपुतली सूत्रधार के (श्रीभा० 1.6.7)। उस विधान पर विश्वास करना — तब भी जब वह हमें आहत करे — समर्पण का आरम्भ है।
2. हानि भी एक द्वार बन सकती है। नारद जी ने माता के देहान्त को उस वरदान के रूप में ग्रहण किया जिसने उन्हें भगवान् के लिए मुक्त किया (श्रीभा० 1.6.10)। श्रद्धा शोक को नकारती नहीं; वह शोक को कृपा में खुलने देती है।

3. भगवान् उस हृदय को उत्तर देते हैं जो तड़पता है। उत्कण्ठा के आँसुओं ने, न कि किसी विधि की निपुणता ने, श्रीहरि को बालक के हृदय में खींचा (श्रीभा० 1.6.16)। सच्ची लालसा स्वयं एक पूजा है।
4. छीना गया दर्शन अभिलाषा को गहरा करता है। भगवान् ने अपना रूप जानबूझकर छिपाया, ताकि एक अबुझ प्यास जगे (श्रीभा० 1.6.21–23)। भगवान् का प्रतीत होता अभाव भी उनकी शिक्षा है।
5. छोटी सेवा अनन्त फल देती है। साधुओं की एक अल्प, विनम्र सेवा ने नारद जी के मन को सदा के लिए भगवान् में स्थिर कर दिया (श्रीभा० 1.6.23) — प्रमाण कि भक्ति का कोई सच्चा कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता।
6. भगवान् की महिमा गाना संसार-सागर का बेड़ा है। व्याकुल, तृष्णाग्रस्त हृदयों के लिए हरि-लीला का श्रवण-कीर्तन ही निश्चित पार है (श्रीभा० 1.6.34) — कठोर योग से भी अधिक निश्चित (श्रीभा० 1.6.35)।

एक भक्तिमय चिन्तन

समस्त परम्परा इस अध्याय से प्रेम करती है, इसका एक कारण है। नारद महान् जन्म से नहीं जन्मे; वे तो किसी वस्तु के बिना जन्मे — एक दासी के पितृहीन पुत्र, जो चारों दिशाओं का ज्ञान होने से भी पूर्व अपनी माता को खो देते हैं। और फिर भी यही वह आत्मा है जो तीनों लोकों का परिव्राजक ऋषि बनती है, जिसकी वीणा भगवान् को हृदय में आमन्त्रित कर सकती है। जिसने उन्हें ऊपर उठाया वह न जन्म था, न विद्या, न शक्ति, अपितु कुछ सप्ताहों की विनम्र सेवा और लालसा की एक नदी। जब भगवान् एक झलक देकर उसे छीन लेते हैं, तब हमें अभाव को अस्वीकृति समझने का प्रलोभन होता है। नारद हमें उसे आमन्त्रण समझना सिखाते हैं — भगवान् के अभाव की पीड़ा ही तो भगवान् का आकर्षण है। और इस प्रकार उनका जीवन प्रत्येक साधारण जिज्ञासु के लिए प्रोत्साहन बन जाता है: जहाँ हो वहीं से आरम्भ करो, साधुओं की सेवा करो, और हृदय को तड़पने दो। जो गीत तुम धारण करते हो, वह किसी थके संसार को आनन्दित कर सकता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज वही करें जिसने नारद जी को तारा — गाएँ, चाहे धीरे से। भगवान् के किसी एक पवित्र नाम को — कृष्ण, हरि, मुकुन्द — लेकर कुछ मिनट ऊँचे स्वर में दोहराएँ, और उस ध्वनि को हृदय में बसने दें। यदि कोई लालसा उठे, चाहे छोटी-सी, उसे दूर न धकेलें; उसे अपनी प्रार्थना के रूप में अर्पित करें। स्मरण रखें कि भगवान् को समीप खींचने वाली पूर्णता नहीं, अपितु एक बालक के आँसू थे।

उपसंहार

इस प्रकार प्रथम स्कन्ध का षष्ठ अध्याय — नारद और व्यास का संवाद — समाप्त होता है, इस महान् पुराण में, जिसे आत्मज्ञानी परमहंस-संहिता कहते हैं। श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 6 में देवर्षि नारद अपने पूर्वजन्म की कथा पूर्ण करते हैं: वन में अकेला पितृहीन बालक, श्रीहरि का दिया और प्रेमपूर्वक छीना गया दर्शन, शाश्वत स्मृति का वचन, मृत्यु और एक नई सृष्टि के पार उनकी यात्रा, और भगवान्-प्रदत्त वीणा के साथ उनका अनन्त विचरण, हरि की महिमा गाते हुए तथा सन्तप्त संसार को आनन्दित करते हुए। यह अध्याय हमारी दीनता को आशा में बदल देता है, क्योंकि यह दिखाता है कि भगवान् का द्वार महानता से नहीं, अपितु सेवा और लालसा से खुलता है। अगले अध्याय से पूज्य सूत जी इस पवित्र इतिहास को आगे बढ़ाएँगे — व्यास जी की अपनी महान् रचना की ओर, और कुरुक्षेत्र के प्रचण्ड प्रसंगों की ओर। हम भी, नारद जी के समान, भगवान् का नाम सदा अपने अधरों पर और उनका रूप सदा अपने हृदय में धारण करें।

श्रीमद्भागवतम् की यह दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाये।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ और आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), प्रथम स्कन्ध, षष्ठ अध्याय, पुस्तक-पृष्ठ 19–22।

Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust. पण्डित डॉ॰ श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-6-narada-and-vyasa-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट